विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक
महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ
1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010
फोन : 0734-2521499, 0755-2660407
e-mail : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-3
विक्रमादित्य ने कराया था विलुप्त हो चुके श्रीराम जन्म मंदिर पुनर्निर्माण
अजय खेमरिया

पृष्ठ क्र. 4-6
मालवा का लौह-युग
डॉ. मुकेश कुमार शाह

पृष्ठ क्र. 7
हवा का भोजन कर जीवित रहीं अहल्या
प्रमोद भार्गव

पृष्ठ क्र. 7
पुस्तक चर्चा
संस्कृत वाग्मय में जल प्रबंधन
मनोज कुमार

विक्रमादित्य ने कराया था विलुप्त हो चुके श्रीराम जन्म मंदिर पुनर्निर्माण

अजय खेमरिया

भारतीय समाज के कम ही लोगों को पता है कि महाराज विक्रमादित्य ने भी बाबा महाकाल मंदिर की शोभा बढ़ाने के साथ साथ लोप हो चुकी अयोध्या की फिर से खोज करने तथा श्री राम जन्म मंदिर के पुनर्निर्माण कराने का महती कारज भी किया था। आज से कोई 2078 बरस पहले, जिसे बाबर के सेनापति मीर बांकी ने 1528 में ध्वस्त किया था और जिस पर अब भव्य राम मंदिर का पुनर्निर्माण हो रहा है। साथ ही अयोध्या में 240 नये मंदिरों का तथा 60 प्राचीन मंदिरों के निर्माण का श्रेय भी महाराजा विक्रमादित्य को जाता है। यह कोई कपोल कल्पित बात नहीं है, बल्कि सर्वोच्च न्यायालय में दी गयी तथ्यात्मक दलील का भाग है जिसे न्यायालय द्वारा मान्यता दी गयी है. इसका विस्तार से उल्लेख गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'अयोध्या दर्शन' में भी मिलता है।

उल्लेखनीय है कि श्रीरामजन्मभूमि पक्ष की ओर से कहा गया था कि उस स्थान पर महाराजा विक्रमादित्य के समय से एक मंदिर था जिसके कुछ हिस्से को बाबर की सेना के कमांडर मीर बांकी ने नष्ट किया था और मस्जिद बनाने का प्रयास किया था। उसने उसी मंदिर के खम्भे आदि इस्तेमाल किये। ये खम्भे काले कसौटी पत्थर के थे और उन पर हिन्दू देवी-देवताओं की आकृतियां खुदी हुई थी। इस निर्माण कार्य का बहुत विरोध हुआ और हिन्दुओं ने कई बार लड़ाईयां लड़ीं जिसमें लोगों की जानें भी गई। अंतिम लड़ाई 1855 में लड़ी गयी थी। इस सबके कारण वहां मस्जिद की मीनार कभी नहीं बन सकी और वुजू के लिए पानी का प्रबंध भी कभी ना हो सका।

सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने भी श्री नागेश्वरनाथ मंदिर के प्रति अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि- 'इस मंदिर पर नामालूम कितनी आंधियां और भयंकर तूफान आए परंतु यह सबको बर्दाश्त करता हुआ अपने स्थान पर अडिग और अचल खड़ा है।' महाराज विक्रमादित्य ने जब अयोध्या की पुन: खोज की तो सबसे पहले इसी स्थान का पता लगा। जनश्रुति के अनुसार महाकवि कालिदास को 'स्त्रीयोनि' में जन्म लेने का श्राप यहीं से मिला था। डाउसन के अनुसार महाराजा विक्रमादित्य ने 240 नये मंदिर बनवाये और 60 का जीर्णोद्धार किया।

शुभशील के पंचशती बोध में महाराजा विक्रमादित्य द्वारा अयोध्या में उत्खनन करके चर्मकार स्त्री की स्वर्णजरी की जूतियां अन्वेषण की कथा है। अयोध्या दर्शन (गीता प्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ 98-99) के अनुसार महाराजा विक्रमादित्य द्वारा निर्मित प्राचीन मंदिरों में हैं-

1. श्रीरामजन्म भूमि मंदिर :

श्रीराम जन्म स्थान पर कसौटी पत्थर के 84 स्तंभों और सात कलशों वाला मंदिर महाराजा विक्रमादित्य ने बनवाया था। जिसे 1528 ई. में मुगल बादशाह बाबर के सेनापति मीरबांकी ने ध्वस्त कर दिया था। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा किये गये उत्खनन में वहां हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियां, प्रतीक और स्तंभ प्राप्त हुए हैं जिसके आधार पर वहां एक भव्य मंदिर था, इस बात की पुष्टि हुई है।

2. कनक भवन :

अयोध्या राजवंश के पराभव के बाद कनक भवन भी जर्जर होकर ढह गया। सोने का यह महल माता कैकेयी ने सीताजी को मुंह दिखाई में दिया था। यह श्रीराम-जानकी का विहारस्थल है। महाराजा विक्रमादित्य ने 57 ई.पू. में कनक भवन पुन:निर्मित कराया। उसे लगभग 11वीं शती ई. में यवनों ने ध्वस्त कर दिया। वर्तमान कनक भवन का निर्माण ओरछा नरेश सवाई महेन्द्र श्रीप्रतापसिंह की धर्मपत्नी महारानी वृषभानुकुंवरि द्वारा सन् 1891ई. में करवाया।

3. रत्नसिंहासन मंदिर :

जन्मस्थान के पास रत्नमंडप ही रत्नसिंहासन मंदिर है। यहां भगवान श्रीराम का राज्याभिषेक हुआ था। कनक भवन के निकट दक्षिण में है। यहां विक्रमादित्यकालीन तीन मूर्तियां हैं। दुर्भाग्य से यह स्थान अपनी स्वतंत्र पहचान खोता जा रहा है।

4. लक्ष्मण मंदिर, सहस्त्रधारा तीर्थ :

सहस्त्रधारा तीर्थ (लक्ष्मण घाट पर) लक्ष्मणजी के शरीर छोड़ने के स्थान पर यह मंदिर है। यहां रामांज्ञा से श्री लक्ष्मणजी शरीर छोड़कर परमधाम पधारे थे। यहां मंदिर में शेषावतार लक्ष्मणजी की 5 फुट ऊंची चतुर्भुज मूर्ति है। यह मूर्ति सामने कुंड में पायी गयी थी। लक्ष्मण घाट पर यह मंदिर लक्ष्मणकिला के निकट स्थित है। नागपंचमी एवं पूरे वैशाख मास में यहां विशेष भीड़ रहती है।

5. बड़ी देवकाली (शीतलादेवी दुर्गाकुण्ड पर):

इन्हें भगवान श्रीरामचंद्रजी की कुलदेवी कहा जाता है। द्वापर युग में सूर्यवंशी महाराज सुदर्शन द्वारा यहां एक मंदिर की स्थापना की गई। कालांतर में महाराजा विक्रमादित्य ने शालग्राम शिलामय की त्रिदेवियों की स्थापना की गयी। यहां एक ही शिला में महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती शक्तियंत्र सहित अंकित है। अयोध्या के इस आदिशक्तिपीठ पर आज भी अयोध्यावासी बड़ी श्रद्धा रखते हैं। यहां एक जल से परिपूर्ण सरोवर (कुंड) भी है। 2002ई. में मंदिर एवं सरोवर का जीर्णोद्धार किया गया है। यह फैजाबाद चौक से आग्नेय (दक्षिण पूर्व) कोण में स्थित है।

6. छोटी देवकाली गिरिजा (ईशान देवी) नामक प्रसिद्ध मंदिर है। इस विग्रह की स्थापना त्रेतायुग में श्रीसीताजी द्वारा की गई थी जिसे वे अपने साथ जनकपुर से लायी थीं। यह स्थान मत्तगजेन्द्र चौराहे के पास सप्तसागर के निकट अयोध्या में ही है। (पृष्ठ-98-99)

वर्ष 2019 को उच्चतम न्यायालय का फैसला प्रकट हुआ। तद्नुसार श्रीरामजन्म भूमि पक्ष की ओर से कहा गया था कि उस स्थान पर महाराजा विक्रमादित्य के समय से एक मंदिर था। (पृष्ठ-81)

उज्जयिनी के सम्राट विक्रमादित्य ने इसकी खोज कर इस (अयोध्या) को पुन: बसाया।(पृष्ठ-92)

महाराजा विक्रमादित्य ने

महाराज विक्रमादित्य ने भी बाबा महाकाल मंदिर की शोभा बढ़ाने के साथ साथ लोप हो चुकी अयोध्या की फिर से खोज करने तथा श्री राम जन्म मंदिर के पुनर्निर्माण कराने का महती कारज भी किया था। आज से कोई 2078 बरस पहले, जिसे बाबर के सेनापति मीर बांकी ने 1528 में ध्वस्त किया था और जिस पर अब भव्य राम मंदिर का पुनर्निर्माण हो रहा है। अयोध्या में 240 नये मंदिरों का तथा 60 प्राचीन मंदिरों के निर्माण का श्रेय भी महाराजा विक्रमादित्य को जाता है। यह कोई कपोल कल्पित बात नहीं है, बल्कि सर्वोच्च न्यायालय में दी गयी तथ्यात्मक दलील का भाग है जिसे न्यायालय द्वारा मान्यता दी गयी है.

अयोध्या की पुन: खोज की तो सर्वप्रथम नागेश्वर मंदिर मिला। (पृष्ठ-75)

एक कथानुसार महाकवि कालिदास को स्त्री योनि में जन्म लेने का श्राप यहीं से मिला था। (पृष्ठ-45-46)

डॉ. श्रीराम अवतार 'श्रीराम जन्मभूमि : अयोध्या का इतिहास मे' लिखते हैं कि सात मोक्षदायिनी नगरियों में प्रथम नगरी अयोध्या सतयुग में महाराज मनु ने बसायी थी। सरयू नदी के किनारे बसी यह नगरी 12 योजन (144 किलोमीटर) लम्बी तथा 3 योजन (36 किलोमीटर) चौड़ी थी। चक्रवर्ती सम्राट दशरथजी ने इसे विशेष रूप से बसाया था। इसमें सभी प्रकार के बाजार थे। तथा इसकी रक्षा खाइयों, किवाड़ों, और शताघ्नियों से होती थी। महाराज इक्ष्वाकु, अनरण्य, मान्धाता, प्रसेनजित, भरत, सगर, अंशुमान, दिलीप, भगीरथ, ककुत्थ्य, रघु, अम्बरीष जैसे सम्राटों की यह राजधानी रही। श्रीरामजी की आज्ञा से इसके प्रधान देवता हनुमानजी हैं।

वे आगे लिखते हैं कि श्रीराम के परमधाम पधारने पर यह नगरी जनशून्य हो गई थी। तब महाराज कुश ने इसे पुन: बसाया था। यह पावन नगरी जब पुन: लुप्त हो गई तब लगभग 2500 वर्ष पूर्व उज्जयिनी के सम्राट विक्रमादित्य ने इसकी खोज कर इसे पुन: बसाया था। 1525 ई. में बाबर के मीर बांकी ने यहां के श्रीराम जन्मभूमि मंदिर को ध्वस्त कर दिया था। श्रीराम जन्मभूमि मंदिर की रक्षा के लिए संघर्ष का इतिहास काफी लम्बा है।

लेखक के अनुसार बाबर के पुत्र हुमायूं के शासनकाल में हसवर के स्वर्गीय राजा रणविजयसिंह की महारानी जयकुमारी ने तीस हजार स्त्री सैनिकों के साथ मंदिर पर पुन: अधिकार प्राप्त कर लिया था। उनके गुरु स्वामी रामेश्वरानंद ने हिन्दू-जागरण किया। किन्तु तीसरे दिन हुमायूं की सेना आ गयी और पुन: मुसलमानों का कब्जा हुआ। अकबर के समय में हिन्दुओं ने बीस बार आक्रमण किये किन्तु उन्नीस बार असफल रहे। 20वीं बार रानी और उनके गुरु बलिदान हो गये। किन्तु हिन्दुओं ने चबूतरे पर कब्जा कर राम मंदिर बनाया।

जहांगीर एवं शाहजहां के समय में शांति रही। औरंगजेब ने जांबाज के नेतृत्व में सेना भेजी, पर स्वामी वैष्णवदास के दस हजार चिमटाधारी साधुओं ने रेलवे के सोहावल स्टेशन के निकट अपना पड़ाव डाला था। खिलजी के आक्रमण से मंदिर का बाहरी भाग तो ध्वस्त हो गया किन्तु जब मुख्य भाग पर उसने आक्रमण किया, उस समय स्थानीय जनता ने ठाकुर परशुरामसिंह था श्री गणराजसिंह के नेतृत्व में आक्रमणकारियों से डटकर लोहा लिया। अंत में आताताइयों को बुरी तरह से यहां हारना पड़ा। तीसरा बड़ा आक्रमण इस मंदिर पर औरंगजेब का हुआ। उसने नागेश्वर मंदिर के निकटस्थ अहिल्याबाई घाट पर स्थिति श्रीत्रेतानाथ के मंदिर को ध्वस्त कर उस स्थान पर विशाल मस्जिद खड़ी कर दी, जो आज भी टूटी-फूटी अवस्था में खड़ी है।

इस संबंध में हैमिल्टन नामक विद्वान ने अपनी पुस्तक 'वॉकिंग ऑफ द वर्ल्ड' में लिखा है-'मुसलमानी शासनकाल में अयोध्या के प्रसिद्ध नागेश्वरनाथ के मंदिर को गिरवाकर वहां मस्जिद खड़ी करने के विचार से दो बार आक्रमण किये गये, मगर वे नाकामयाब रहे।'

अयोध्या के इस अत्यंत प्राचीन शिव मंदिर के सम्बन्ध में पाश्चात्य इतिहासकारों ने, जिनमें उल्लेखनीय है- रैमिन्टन, कर्निंघम, जार्ज विलियम रेनॉल्ड्स, विसेंट स्मिथ, मैक्स मूलर, बेवर, लूथर, वूलर, हण्ट, सिटनी, ह्विटमैन, बिल्फ्रेड, एच. इलियेट, सर जॉन फ्रांकिक तथा इनके अतिरिक्त भारतीय विद्वान श्री भांडारकर प्रभृति ने बहुमूल्य ऐतिहासिक तथ्य, संस्मरण एवं जानकारीपूर्ण उद्‌गार प्रस्तुत किये हैं। जिनसे नागेश्वरनाथ मंदिर के इतिहास एवं गौरवशाली अतीत पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

मालवा का लौह-युग

डॉ. मुकेश कुमार शाह

मालवा में लौह-युग का प्रारम्भ भी लगभग सातवीं-छठी ई. पू. माना जाता है। पुरातत्त्वीय अवशेषों से ज्ञात जानकारी इस कालखण्ड में उज्जयिनी के नगरीय वैभव की गाथा कहती है। उज्जयिनी के प्रकार के निर्माण के समय यहाँ कृष्ण एवं रक्त मृदभाण्डों निर्माण प्रारम्भ हुआ और इसके साथ ही मालवा में लौह-युगीन संस्कृति भी विकसित हुई। वस्तुत: भारत में सिंधु घाटी की सभ्यता के पश्चात् छठी शताब्दी ई. पू. से नगर पुन: अस्तित्त्व में आते हैं। इसी नगरीकरण को द्वितीय नगरीय क्रांति कहा गया है। मालवा में पुरातत्त्वीय उत्खननों से उज्जैन, विदिशा, महेश्वर-नावड़ाटोड़ी इत्यादि स्थानों से नगरीकरण के प्रमाण मिलते हैं। प्रथम नगरीकरण में जहाँ धातु-प्रस्तर का प्रयोग हुआ, विशेषकर ताँबा और काँसा का, वहीं द्वितीय नगरीकरण की प्रमुख धातु लोहा थी। लोहे के प्रयोग के कारण छठीं शताब्दी ई. पू. को लौह युग भी कहा जाता है। लौह युग का विकास प्रारम्भ में छोटे-छोटे गणराज्यों के विकास के साथ हुआ। इन गणराज्यों में लौह तकनीकी का प्रयोग बढ़ता गया और कुछ गणराज्यों का सामर्थ्य अन्यों से बढ़ गया और इसकी परिणति महाजनपदों के रूप में हुई। लौह युग की संस्कृति राजनीतिक परिपक्वकता के रूप में सामने आई। ऐसे शोड़श महाजनपदों का विकास भारत में हुआ। कालान्तर में जब किसी एक महाजनपद ने अन्य पर आक्रमण करके वहाँ अपनी प्रभुसश्रा पायी, तब महाजनपद, साम्राज्य के रूप में विकसित हो गये। इस प्रकार बुद्ध के समय में चार प्रमुख महाजनपद थे, जो मगध, कौशल, वत्स एवं अवन्ति के रूप में विख्यात हुए।

इस विकास की परिणति के फलस्वरूप पाटलिपुत्र, कौशाम्बी तथा उज्जयिनी जैसे बड़े-बड़े नगरों का निर्माण हुआ एवं जन-साधारण के भौतिक ऐश्वर्य की वृद्धि हुई। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी में विकास के फलस्वरूप पत्थरों द्वारा निर्मित तथा पकी हुई ईंटों से बनाये हुए मकान अधिकाधिक उपलब्ध होने लगे। राजप्रासादों के परिमाण तथा मजबूती में सर्वथैव वृद्धि होने लगी। लौहयुगीन शस्त्रास्त्रों के कारण युद्ध-शास्त्र में नया मोड़ आया। शत्रुओं से बड़े-बड़े एवं समृद्ध शहरों का संरक्षण करने हेतु विशाल एवं मजबूत तटबन्दियाँ बनाना आवश्यक हो गया। उज्जयिनी में आदितम् तटबन्दी की नींव डाली गई, जो कि कीचड़ से बनाई गई थी। उज्जयिनी के गढ़कालिका के द्वितीय उत्खनन में जल-परिखा के अतिरिक्त मिट्टी और ईंटों के चूरे से बनाया गया एक मार्ग भी प्राप्त हुआ हैं जो कि संभवत: विश्व की प्राचीनतम् पक्की सड़क थी। संभवत: इसी मार्ग से उदयन-वासवदश्रा ने कौशाम्बी की ओर पलायन किया था।

इसी उत्खनन के मध्य पीपल खोदरा नाले के पास 30-35 फीट लम्बा-चौड़ा कुण्ड मिला, जिसका निर्माण आद्य-मौर्य युग में हुआ था। मच्छेन्द्र नाले के पूर्व की ओर एक पकी ईंटों की नहर मिली है, वह भी सम्भवत: आद्य-मौर्य या उससे भी पूर्व की है। इसमें अंतर-अंतर पर काचित इष्टिकाएँ लगी थी। काचित इष्टिकाओं का काल मौर्य-पूर्व का है। गढ़कालिका में एक जगह मणि बनाने का कारखाना भी मिला है। यहाँ से लौह-धातु गलाने की भट्टियाँ तथा इस्पात निर्माण हेतु आवश्यक वस्तुएँ भी मिली हैं। यहीं से नलिका कूपों की भी प्राप्ति हुई। इस उत्खनन में ऋण-मुक्तेश्वर के आस-पास से चित्रित धूसर पात्र भी प्राप्त हुए हैं। ये सभी प्राक-मौर्ययुगीन हैं। उज्जयिनी के उत्खनन में काष्ठ प्राकार की प्राप्ति भी महत्त्वपूर्ण है, जिसे गर्दे महोदय ने खोजा था, यह भी प्राक-मौर्ययुगीन है। उज्जैन के अतिरिक्त विदिशा से भी प्राक-मौर्ययुगीन एक नहर प्राप्त हुई हैं, जो कि संभवत: कृषि-कर्म में प्रयुक्त होती थी। उज्जैन के अतिरिक्त कसरावद से भी प्राचीन सड़क के प्रमाण मिले हैं। जल निकासी के सबसे विकसित प्रमाण उज्जैन और आवरा से प्राप्त हुए हैं।

इसी प्रकार पुरातात्त्विक और साहित्यिक साधनों की सहायता से मालवा की प्राचीन तकनीकी का ज्ञान हो पाया है। इससे केवल ताम्राष्मीययुगीन अपितु छठीं शताब्दी ई. पू. से मध्ययुगीन तकनीकी का ज्ञान भी होता है। वैज्ञानिक तकनीकी संदर्भ के अन्तर्गत घरों, प्रासादों के निर्माण प्रकार, सड़क तथा जल निकासी, जल संग्रहण एवं कृषि कर्म, यातायात के साधन, अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत सिक्कों का प्रचलन तथा उनके निर्माण में प्रयुक्त धातु तथा धातुओं को गलाने की तकनीकी, सिक्के बनाने

के लिए साँचों का प्रयोग तथा आहत सिक्के बनाने की सिल, धातु को पीटकर उसे पतरे का रूप देकर उस पर विभिन्न प्रकार के प्रतीक चिह्नों को ठप्पांकित करना, इत्यादि प्रमुख हैं।

घरों में विभिन्न प्रकार के हाथ से निर्मित तथा कुम्हार के चाक पर निर्मित बर्तनों के व्यवहार, चूल्हों का प्रयोग, घर की सुरक्षा हेतु दरवाजे, प्रकाश आदि की व्यवस्था के लिए खिड़कियों का होना तथा इनमें लौह धातु का प्रयोग चटकनियों, सांकल इत्यादि के रूप में होना, तद्युगीन तकनीकी को प्रदर्शित करता है। घर बनाने के लिए बाँस तथा घास के स्थान पर अब मिट्टी तथा ईंटों का व्यवहार होने लगा था, जो कि सिंधु-सभ्यता से ही व्यवहृत था।

पूर्वोद्धृत विवरण में वैद्यगिरि का पता भी चलता हैं, जब प्रद्योत के स्वास्थ्य को ठीक करने के लिए मगध से जीवक नामक वैद्य उज्जयिनी आया था और वत्सराज उदयन की चिकित्सा हेतु उज्जयिनी के वैद्य प्रद्योत के आदेश पर उसकी सुश्रुषा कर रहे थे तथा उसके व्रणों (घावों) की चिकित्सा के अलावा उसके लिए 'मणि-भूमिका' की व्यवस्था भी की गई थी, यह वर्णन प्रतिज्ञा यौगन्धरायण से प्राप्त होता है।

इस प्रकार मालवा में वैज्ञानिक तकनीकी उत्क्रांति का पुनर्नवीनीकरण छठीं शताब्दी ई. पू. से प्रारम्भ होने लगा। वस्तुत: पुनर्नवीनीकरण से यहाँ तात्पर्य यह है कि इस युग से पूर्व वैदिक-काल और उसके भी पूर्व सिंधु-सभ्यता तथा पाषाण-युग में मनुष्य ने अपने रहवास, दैनन्दिनी आवश्यकताओं तथा जीवन के संघर्ष के लिए जो भी उपाय किये, वे सभी तकनीकी क्षेत्र के अन्तर्गत ही आती है। भले ही आदिकाल में मनुष्य ने पत्थर का प्रयोग पशुओं से बचने के लिये तथा उसी का प्रयोग शिकार, अग्नि तथा अपने घर के लिये किया अथवा कीमती पत्थरों का प्रयोग शृंगार के लिये किया, ये सभी तकनीकी प्रयोग के अन्तर्गत ही आती है; इसमें ग्रामीण सभ्यता से ऊपर नगरीकरण के लिये जो भी प्रयोजन किये गये हो वे सब समाहित हैं।

लौह धातुकर्म : तकनीकी एवं वैज्ञानिक उत्क्रांति

वर्तमान विश्व में लौहे की उपयोगिता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। मानवीय सभ्यता की चतुर्दिक प्रगति में लौहे की भूमिका स्वयं सिद्ध है। ताम्र एवं कांस्य धातु के बने हुए उपकरणों की अपेक्षा लौह उपकरण अधिक स्थायी एवं मजबूत होते हैं, परन्तु लौह की विशिष्टता उसकी प्रचुरता के कारण है। लौहे के प्रचलन के फलस्वरूप आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में भी उल्लेखनीय परिवर्तन घटित हुए। लौहे के तकनीकी ज्ञान का महत्त्वपूर्ण योगदान राजनीतिक क्षेत्र में भी माना जाता है। प्राचीनकाल के अनेक साम्राज्यों की शक्ति का स्रोत लौह तकनीक के ज्ञान और उसके उपकरणों के व्यापार पर एकाधिकार से स्वीकार किया जा सकता है। मानव की तकनीकी प्रगति के इतिहास में लौह धातु के सर्वप्रथम् शोधन की घटना का अत्यधिक महत्त्व है, किन्तु लौहे का सर्वप्रथम् प्रचलन कब और कहाँ पर हुआ ? यह प्रश्न अभी भी विवादास्पद है।

लौहे का ज्ञान भारत में 1000 ई.पू. अथवा उससे भी कुछ शताब्दी पूर्व के लगभग माना जाता है। कतिपय यूरोपीय विद्वानों के अनुसार भारतीयों को लौहे का ज्ञान यूनानियों के आगमन से पूर्व

> लौह्युगीन शस्त्रास्त्रों के कारण युद्ध-शास्त्र में नया मोड़ आया। शत्रुओं से बड़े-बड़े एवं समृद्ध शहरों का संरक्षण करने हेतु विशाल एवं मजबूत तटबन्दियाँ बनाना आवश्यक हो गया। उज्जयिनी में आदितम् तटबन्दी की नींव डाली गई, जो कि कीचड़ से बनाई गई थी। उज्जयिनी के गढ़कालिका के द्वितीय उत्खनन में जल-परिखा के अतिरिक्त मिट्टी और ईंटों के चूरे से बनाया गया एक मार्ग भी प्राप्त हुआ हैं जो कि संभवत: विश्व की प्राचीनतम् पक्की सड़क थी। संभवत: इसी मार्ग से उदयन-वासवदत्ता ने कौशाम्बी की ओर पलायन किया था।

नहीं था। किन्तु इस मत का खण्डन प्राचीन यूनानी साहित्य के आन्तरिक साक्ष्यों से ही हो जाता है, जिसके अनुसार सिकन्दर के भारतीय अभियान के पूर्व ही भारतीयों ने लौहे के उपकरण बनाने की कला में दक्षता प्राप्त कर ली थी। इस परम्परा के अनुसार भारतीय लौहारों ने लौहे के ऐसे उपकरण बनाये थे, जिन पर जंग नहीं लगता था। मार्टिमर व्हीलर ने भारत में लौहे के प्रचलन का गौरव ईरान के हाखामनी शासकों को दिया है। किन्तु विगत तीन-चार दशकों में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जो पुरातात्त्विक अन्वेषण और उत्खनन हुए हैं, उनसे लौहे की प्राचीनता के सम्बन्ध में हमारा ज्ञानवर्धन हुआ।

इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि भारत में आर्यों के सन्दर्भ में कुछ मान्यताएँ अब सही प्रतीत नहीं होती हैं। पहले ऐसा समझा जाता था कि आर्य इस देश में अश्व और लौह के साथ आये थे, परन्तु ऋग्वेद के आन्तरिक साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि ऋग्वैदिक आर्यों को लौहे का ज्ञान नहीं था। ऋग्वेद में 'अयस' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसे प्रारम्भ में विद्वानों ने लोहा समझ लिया था। ऋग्वेद में यह शब्द लौहे का पर्याय न होकर धातु के सामान्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उत्तर वैदिक काल के ग्रंथों में 'लोहित अयस' और 'कृष्ण अयस' दो शब्द मिलते हैं, जिसका क्रमश: अर्थ ताम्र अथवा कांस्य तथा लौह धातु के रूप में लिया गया है। कालान्तर में अयस शब्द का प्रयोग सामान्यत: लौहे के लिए किया जाने लगा। 'कृष्ण यजुर्वेद' की 'तैतरीय संहिता' में छ: अथवा बारह बैलों द्वारा खींचे जाने वाले हलों का उल्लेख मिलता है। संभवत: इस प्रकार के हल काफी भारी होते रहे होंगे। यह ग्रंथ लौहे से परिचित प्रतीत होता है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि इस हल की फाल लौहे की रही होगी। 'अथर्ववेद' में लौहे की फाल और ताबीज का उल्लेख मिलता है।

'शतपथ ब्राह्मण' (7.2.2) में लौहे का सम्बन्ध कृषक वर्ग से स्थापित किया गया है। प्राचीन बौद्ध ग्रन्थ 'सुत्तनिपात' में लौहे की फाल के तपाने एवं तापानुशीतन का वर्णन मिलता है। इन साहित्यिक साक्ष्यों से भारत में कृषि के लिए लौह उपकरणों के उपयोग की जानकारी 800-700 ई. पू. के लगभग मिलती है। भारत में लौहे की प्राचीनता, प्रसार और कालानुक्रम का विवेचन करते समय पुरातात्त्विक साक्ष्यों का सहारा महत्त्वपूर्ण है। भारत में लौहे के प्रचलन वाले प्रारम्भिक क्षेत्रों पर दृष्टिपात करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश पुरास्थल लौहे की खानों के समीपवर्ती क्षेत्रों में स्थित थे। प्राचीन काल में गांगेय क्षेत्र के मैदानी भाग में भी लौह धातु के शोधन के साक्ष्य धातु मल के रूप में प्राप्त हुए हैं। विगत तीन-चार दशकों में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जो उत्खनन कार्य हुए हैं, उनसे लौहे के प्रयोग की प्राचीनता के विषय में उल्लेखनीय जानकारी प्राप्त हुई है। भारत की ऊपरी गंगा घाटी एवं दो आब, पूर्वी भारत (मध्य गंगा घाटी), मध्य भारत एवं दक्षिण भारत के इन चार क्षेत्रों से प्राप्त पुरातात्त्विक साक्ष्यों की समीक्षा का प्रयास भी किया जा रहा है।

कुछ दशक पूर्व उत्तरी काले ओपदार मृद्भाण्डों के साथ लौहे के उपकरण प्राय: सभी पुरास्थलों से प्राप्त हुए थे, जिनकी प्राचीनतम सीमा रेखा 600 ई.पू. निर्धारित की गई थी। अत: यह कहने में कोई आपत्ति नहीं थी कि इस युग में उत्तर भारत के लोग लौहे के उपकरणों से परिचित थे। प्रारम्भ में हस्तिनापुर एवं रोपड़ के उत्खननों से चित्रित धूसर पात्र परम्परा के साथ लौह उपकरण नहीं मिले थे इसलिए इन पुरास्थलों के उत्खाताओं ने यह निष्कर्ष निकाला कि चित्रित धूसर पात्र परम्परा के साथ लौहे का प्रचलन नहीं था, किन्तु आलमगीरपुर के उत्खनन में इस पात्र-परम्परा के साथ लोहे के उपकरण भी उपलब्ध हुए। ऐसे ही साक्ष्य अहिच्छत्र, नोह, अतरंजीखेड़ा आदि से भी प्राप्त हुए हैं। इस संस्कृति के लोग स्लेटी रंग की थालियों एवं कटोरों का प्रयोग करते थे। चावल, जौ की कृषि एवं मवेशियों का पालन करते थे तथा बाँस-बल्ली की झोपड़ियों अथवा कच्चे मकानों में रहते थे। इन स्थानों से लौह उपकरणों में बाण फलक, भाला फलक, चाकू, कटार, खुरपी, मछली पकड़ने की कँटियाँ, चिमटा, बसूला एवं कीलें आदि प्रमुख हैं। हस्तिनापुर से लौह धातुमल एवं अतरंजीखेड़ा से धातुमल तथा धातु शोधन में प्रयुक्त मिट्टी की भट्टियाँ मिली हैं, इससे इंगित होता है कि धातु को गलाने का कार्य स्थानीय रूप से होता था। पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर लगभग 1000 ई.पू. के आस-पास इसका तिथिक्रम प्रस्तावित किया जा सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि भारत में लौह धातुकर्म विधा की खोज स्थानीय आधार पर हुई, इसमें किसी विदेशी सत्ता के आगमन के बाद यहाँ पर धातुकर्म का कार्य प्रारम्भ हुआ हो, ऐसे प्रमाण नहीं मिलते हैं।

हवा का भोजन कर जीवित रहीं अहल्या

प्रमोद भार्गव

विज्ञान की अभी तक यही धारणा है कि जीने के लिए कुछ न कुछ आहार बेहद आवश्यक है। पर एक निश्चित समय तक कुछ लोगों की बगैर भोजन-पानी के जिंदा रहने की खबरें वैज्ञानिकों को आश्चर्य में डालते हुए, यह जानने के लिए प्रेरित करती रही हैं कि वे ऐसे अनुसंधान करें, जिनमें बिना आहार के जीवित बने रहने की संभावनाएं हों। थकी अवस्था या शोकाकुल रहते हुए मनुष्य में यह विचार पनपता है कि भोजन बनाना और खाना ही न पड़े या कोई ऐसी गोली (दवा) उपलब्ध हो जिसे खाने के बाद भूख लगे ही नहीं।

उल्लेखनीय है कि वाल्मिकि रामायण के अनुसार गौतम ऋषि, पत्नी अहल्या के चरित्र पर शंका कर उन्हें हवा पीकर, अदृश्य रहने का दंड देते हैं। केवल हवा पीकर जीवित रहने वाली इसी स्त्री को अन्य रामायणों में शिला की उपमा दी गई है। इस स्थिति में पुत्र शतानंद व चिरकारी तथा पुत्री अंजनी अहल्या की सेवा में रहते हैं। अर्थात हमारे ऋषि हवा से भोजन बनाने की तरकीब न केवल जानते थे, बल्कि विपरीत परिस्थितियों में उसका सेवन भी किया करते थे।

भारत समेत दुनिया के वैज्ञानिक आजकल हवा और मीथेन से भोजन बनाने के प्रयास में जुटे हैं। कुछ वैज्ञानिकों को इस प्रयोग में सफलता भी मिली है। दुनिया के वैज्ञानिक भी भूख नहीं लगने वाली या भूख मिटाने वाले पौष्टिक तत्वों की गोली बनाने की कोशिश में लगे हैं, किंतु अभी पूर्ण सफलता नहीं मिली है। इस हेतु पेड़-पौधों व वनस्पतियों से भी प्रेरणा ली जा रही है, क्योंकि ये प्रकृति में उपलब्ध तत्वों से ही अपना पोशण ग्रहण करके जीवित रहते हैं। पेड़-पौधे प्रकाश संश्लेशन से अपना भोजन ग्रहण करते हैं। गोया, मनुष्य का शरीर पंच तत्वों से सीधे क्यों आहार या ऊर्जा ग्रहण करके जीवित नहीं रह सकता।

वैज्ञानिकों ने इस दृष्टि से 39 पोषक तत्वों वाला एक चूर्ण बनाया है, लेकिन अभी यह चूर्ण प्रचलन में नहीं आया है। हमारे वेदों और योग-साधना में 'प्राणवायु' का जिक्र है। इसे 'प्राणा' भी कहा गया है। इस आधार पर वैज्ञानिकों का एक समूह यह मानकर चल रहा है कि सिर्फ हवा पीकर जिंदा रहा जा सकता है। सूर्य के प्रकाष में खड़े रहकर भी शरीर जीवनदायी तत्व ग्रहण कर लेता है। पश्चिमी देशों में इस प्रक्रिया को 'ब्रेथिरियन्य' कहते हैं। चुनांचे प्राणवायु और प्रकाश की किरणों से जीवनदायी तत्व ग्रहण करने के लिए पहले शाकाहारी होना जरूरी है। फिर मवेशियों से प्राप्त दूध, दही, मठा, मक्खन और घी का सेवन त्यागना होगा। इसके बाद कुछ समय तक केवल तरल पेय पदार्थों को ग्रहण करने की आदत डालनी होगी। तत्पश्चात हवा और प्रकाश पर जिंदा रहना संभव बन सकता है।

हवा पीकर जिंदा रहने के संदर्भ में एक ताजा शोध हुआ है। फिनलैंड के वैज्ञानिकों ने हवा, पानी, सूक्ष्म-अणु (माइक्रोब्स) और ऊर्जा को मिलाकर आहार बनाने का काम किया है। वैज्ञानिक इसे भविष्य का भोजन बता रहे हैं। उनका कहना है कि दुनिया के उन गरीब देशों में जहाँ लोगों को खाने के लिए अनाज और जानवरों को चारा नहीं मिलता है, उनके लिए यह तकनीक उपयोगी है। यद्धपि इस भोजन का स्वाद अभी बहुत अच्छा नहीं है, पर इसमें बेसिक प्रोटीन और खनिज मौजूद हैं। इस भोजन को फिनलैंड के 'वीटीटी टेक्निकल रिसर्च सेंटर' ने तैयार किया है। सेंटर के वैज्ञानिकों का दावा है, हवा में मौजूद कार्बन डाईऑक्साइड, पानी, सूक्ष्म-अणु और सौर्य ऊर्जा से भविश्य का खाना बनाया जा सकता है। इसके लिए इन चीजों को कॉफी कप के आकार के एक बायोरिएक्टर में मिक्स करते हैं। फिर उसमें बिजली का करंट प्रवाहित करते हैं। इससे एक पाउडर बनता है, जिसमें 50 फीसदी प्रोटीन, 25 फीसदी कार्बोहाइड्रेट और बाकी में फैट, न्यूक्लिक एसिड होते हैं। यह भोजन अभी इंसानों के खाने के लिए पूरी तरह तैयार नहीं हो पाया है, पर जानवर आसानी से खा सकते हैं। इंसान के खाने के लायक बनाने के लिए अभी और प्रयोग किए जा रहे हैं। वैज्ञानिकों ने इसे 'फूड फ्रॉम इलेक्ट्रिसिटी प्रोग्राम' नाम दिया है। उनका कहना है कि यह उसी तरह है, जैसे पौधे प्रकाश संश्लेशण से अपना भोजन बनाते हैं, पर उसकी तुलना में इसमें 10 गुना कम ऊर्जा लगती है। वैज्ञानिक जूहापेका पिटकानेन कहते हैं कि सभी तरह का आहार योग्य कच्चा माल हवा में मौजूद है। भविष्य में इस प्रौद्योगिकी को रेगिस्तान, बाढ़, सूखा और अकाल पड़ने वाले इलाकों में लोगों को खाना मुहैया कराने में मदद मिलेगी। भारत में इसी तर्ज पर बैंगलुरु की कंपनी 'स्टिंग बायो' काम कर रही है। साफ है, अहल्या प्रसंग हवा से भोजन बनाने का विज्ञान सम्मत सूत्र का उदाहरण है।

पुस्तक चर्चा/मनोज कुमार

संस्कृत वांग्मय में जल प्रबंधन

जल के बिना जीवन की कल्पना करना मुश्किल है. वर्तमान समय में पूरी दुनिया जल संकट से जूझ रही है. कहा भी जा रहा है कि अगला विश्व युद्ध जल को लेकर हो सकता है. इस भयावह समय के लिए हम-सब बराबरी से जिम्मेदार हैं. जल के अक्षय पात्र को जिस तरह हमने नष्ट किया है, उस नुकसान की भरपायी भी हमको करना होगी. यह हमारा सौभाग्य है कि भारत की संस्कृति में जल को ब्रह्मस्वरूप माना गया है. यह समय संकट का अवश्य है लेकिन हमारी अक्षय वैभव को जानने और समझने का एक अवसर भी है क्योंकि जिस गंभीरता के साथ वैज्ञानिक स्वरूप में हमने जल को समझा है, वैसी समझ दुनिया के दूसरे देशों में देखने को नहीं मिलती है. इस संदर्भ में डॉ. पूजा उपाध्याय द्वारा लिखी गई शोधपरक किताब 'संस्कृत वाङ्गमय में जल प्रबंधन' में जल के महत्व को समझने का अवसर देती है.

डॉ. पूजा उपाध्याय ने अपनी किताब में जल शब्द की उत्पत्ति से लेकर , जल के नामकरण, विभिन्न ग्रंथों में जल का सामान्य स्वरूप, वेदों में जल का स्वरूप एवं संरक्षण, वेदों में जल का स्वरूप एवं भेद का गहन अध्ययन कर पुस्तक को स्वरूप दिया गया है. नौ अध्याय में जल के विभिन्न स्वरूपों का लेखक ने गहरा अध्ययन किया है और ग्रहों के साथ जल का विचार और औषधि के रूप का भी उल्लेख किया है. ज्योतिष शास्त्र में जल के स्वरूप एवं प्रबंधन में मेघ का गर्भोपक्रम प्रसवकाल एवं गर्भ स्थिति जैसे दुरूह विषय को सहज एवं सरल भाषा में प्रस्तुत कर जल को भारतीय समाज के समक्ष एक नये स्वरूप में बताने की सार्थक कोशिश दिखती है.

डॉ. पूजा उपाध्याय की इस बहुमूल्य पुस्तक में आयुर्वेद में जल -तत्व का स्वरूप, भारतीय दर्शन में जल-तत्व का स्वरूप, पुराणों के साथ रामायण में जल चेतना का विस्तार और मनु स्मृति में जल के महत्व का विस्तार से उल्लेख किया गया है. अंतिम अध्याय में लेखक ने विविध जल समस्यायें और जल प्रबंधन की प्रासंगिकता पर चर्चा करते हुए बताया है कि जल नहीं होगा तो जीवन भी नष्ट हो जाएगा. अनादिकाल से जल की महत्ता को भारतीय समाज ने समझा है और वर्तमान समय में इस समझ को नयी पीढ़ी के साथ साझा करने में डॉ. पूजा उपाध्याय की पुस्तक बहुत ही महत्वपूर्ण है. यह किताब महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ की पुस्तक श्रृंखला की महत्वपूर्ण पुस्तक है.

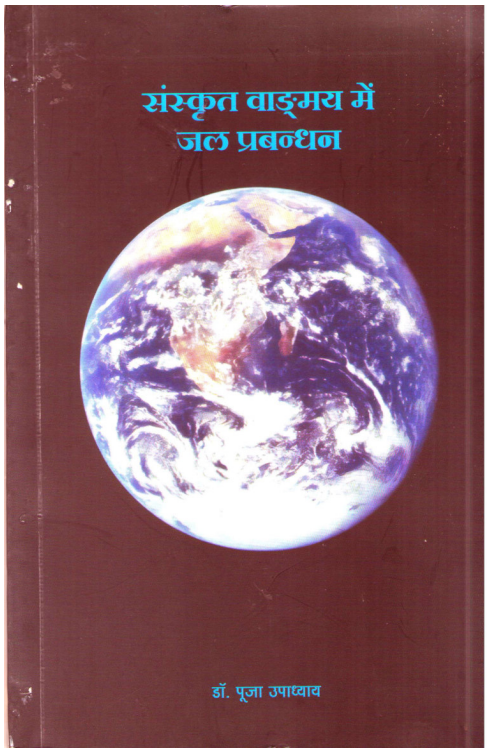

पुस्तक : संस्कृत वांग्मय में जल प्रबंधन

लेखक : डॉ. पूजा उपाध्याय

संपादक : श्रीराम तिवारी

मूल्य : 200/- दो सौ रुपये मात्र

प्रकाशक : महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, 1 उदयन मार्ग उज्जैन-456010

'वराहमिहिर न केवल सूर्य चंद्रादि प्राकृतिक परिवर्तनों का सूक्ष्म अध्ययन किया, अपितु पशु-पक्षियों के व्यवहार का भी गहन विश्लेषण किया यथा मेंढ़कों की आवाज करना, मछलियों का पानी के ऊपर आना, बिल्ली का पंजों से धरती नोचना, चींटियों का अपने अंडों को दूसरे स्थान पर ले जाना, सांपों का पेड़ पर चढ़ना, गायों का अकारण उछलना, गिरगिट का पेड़ की चोटी पर पहुंच कर आकाश को देखना, कुत्तों का आकाश की ओर मुंह करके रोना, पक्षियों का धूल में स्नान करना इत्यादि शीघ्र वर्षा के लिए शुभ शगुन होते हैं.'

इसी पुस्तक से

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ संस्थान स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग मध्यप्रदेश शासन के लिए 1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक श्रीराम तिवारी. समन्वयक मनोज कुमार.

आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन : 0734-2521499 0755-2660407 e-mail : mvspujjain@gmail.com,vikramadityashodhpeeth@gmail.com